डॉ.लता अग्रवाल "तुलजा"

ये बेटियाँ

ये बेटियां
अपना घर
सरिया कर रखने वाली
आती हैं जब भी
मायके
पूरे घर में फैल जाती हैं
खुशबू की तरह
यहां वहां बिखराकर
वस्तुएं अपनी
बिंदास हो मन भर के जीती
बाल -बच्चो से अपने हो बेफिक्र
ज्यों थामकर जीवन की डोर
ईश्वर के हाथ ,हो जाते निश्चिन्त
जाने के एक दिन पहले
माएं बटोरती उन खूशबुओं के रेशों को
कहीं पलंग के नीचे से
टेबल के पीछे से
किसी कमरे से कुछ, किसी कमरे से कुछ
जमाती हैं अटैची बेटियों की
फिर भी छूट ही जाता है
किसी कमरे में
बच्चो की बनियान
जुराफ, निक्कर, पजामी
अपना दुपट्टा, बक्कल
शायद जानबूझकर
कि बिखरी रहे यादें उसकी
उसके जाने के बाद भी
मां बाप के घर में
छाएँ रहें उसके बच्चे
अपनी ननिहाल में
उनकी अनुपस्थिति में भी
अकेले मां -बाप
उनकी वस्तुएं देख- देखकर
करते रहेंगे चर्चा उनकी
यूं यादों में बनी रहेंगी
ये बेटियां
महकता रहेगा घर उनसे ।

औरतें

कहाँ गई
वो तमाम औरतें
जो सुबह फारिग हो
घर के काम से
पति के दफ्तर रवाना होते ही
दिल में से भरी बैठी
औरतें
लगा बैठी थी जमघट
लेकर ऊन सलाई
बुनने स्वेटर
स्वेटर के बहाने बुनती
जीवन में आशा - निराशा
गिरे फंदों को
झट सलाई से खींच
ले आतीं ऊपर
होतीं खुश मानो
पा लिया हो किसी
बड़ी समस्या का हल
गोद में पड़ा उनके
वह बड़ा सा ऊन का गोला
उंगलियों की तर्ज पर उनके
नाचता है
हाथों से दे देकर झटका
कर उसे नजर अंदाज
फिर उंगलियाँ उनकी चल पड़ती
ज्यूँ नचाकर सास ननंद को
इशारे पर अपने
इठलाती सी ये औरतें
शाम ढले पति के लौटने तक
खत्म हो जाता ऊन का गोला
गोले संग मन का गुबार भी
यूँ हो हल्की
लौट जाती थी स्त्रियां अपनी गृहस्थी में
आज तथाकथित सभ्यता के रहते
घर की चारदीवारी में
अपने अहम के घेरे में
कैद होकर रह गई हैं औरतें नहीं राह कोई
निकालने मन का गुबार
भीतर ही भीतर
घुट के मानसिक रोगों की शिकार हो रही हैं
औरतें ।

ISSN:2583-8849